26

लोकतंत्र और मीडिया की भाषा के रूप में हिंदी

—डॉ. रवींद्रनाथ मिश्र

लोकतंत्र में प्रत्येक नागरिक को संवैधानिक दायरे में सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सहज है। लोकतंत्र विचारों की अभिव्यक्ति और उनके आदान-प्रदान से ही विकसित और मज़बूत होता है तथा उसे एक सही दिशा मिलती है। इतिहास गवाह है कि प्राचीन काल से विश्व में जहाँ-जहाँ, जिन-जिन देशों में राजतंत्र के विरोध में गणतांत्रिक समाजों की स्थापना हुई है उनका आधार परस्पर विचारों का आदान-प्रदान और संवाद ही रहा है। आधुनिक युग में लोकतांत्रिक शासन प्रणाली नागरिकों की समानता, स्वतंत्रता, सहकारिता और बंधुता की भावना पर आधारित रही है। आज मीडिया लोकतांत्रिक अधिकारों की रक्षा और सामाजिक न्याय दिलाने के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहा है। देश की सुरक्षा को लेकर वह सैनिक की भांति मातृभूमि की रक्षा के लिए भी काफ़ी सतर्क है। वाल्तेयर का यह कथन लोकतंत्र और मीडिया के संबंध में मंत्रवत महत्व रखता है—''यह हो सकता है कि मैं आपके विचारों से सहमत न होऊँ, फिर भी आपके विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए मैं अपने प्राण दे सकता हूँ।'' ऐसे विचार लोकतंत्र की जड़ों को मजबूत करते हैं।

फ्रांसीसी क्रांति के मूल में वाल्तेयर और रूसो के विचार अत्यंत महत्वपूर्ण रहे हैं जिन्होंने उस समय के जनमानस को आंदोलित किया और परिणामस्वरूप एक नए समाज का गठन हुआ। इनमें जहाँ वाल्तेयर ने चर्च और राजतंत्र का विरोध करते हुए स्वतंत्रता की माँग की वहीं रूसो ने कहा कि ''मनुष्य स्वतंत्र जन्मा है पर सर्वत्र बंधनों में है।'' इन दोनों की महत्वपूर्ण भूमिका यह रही है कि इन्होंने भूमि पर सामंतों के अधिकार को चुनौती देते हुए उसके वास्तविक मालिक के रूप में उस जन को रेखांकित किया जो भूमि के उस टुकड़े पर रहता था और उसके माध्यम से अपनी जीविका अर्जित करता था। इस प्रकार की सामाजिक असमानता एवं शोषण का स्वरूप किसी एक देश में नहीं अपितु संपूर्ण विश्व में व्याप्त था और आज भी है। वस्तुतः सच्चा लोकतंत्र वही होगा जिसमें पूरे समाज में स्वतंत्रता, समानता, सहकारिता, बंधुता, उदारता आदि की भावना वास्तविक रूप में मौजूद हो। यह केवल मंत्र के रूप में नहीं अपितु शासन प्रणाली के व्यवहार और रोज़मर्रा के कार्यों में भी हो। इस शासन व्यवस्था में नीचे से नीचे, ऊँचे-से-ऊँचे और हाशिए पर पड़े हुए आदमी को भी आगे बढ़ने और सभी क्षेत्रों में समान रूप से भाग लेने का अवसर प्राप्त हो। वस्तुतः इस दिशा में प्रयास तो बहुत हुए लेकिन उसका परिणाम सकारात्मक रूप में प्राप्त नहीं हुआ।

आज़ादी के बाद हम जिस स्वराज की कल्पना कर रहे थे, उसका सही रूप देखने को नहीं मिला। विश्व के कई देशों ने मुक्ति के बाद प्रगति के क्षेत्र में अभूतपूर्व सफलता

जन्म : 12 जुलाई, 1957, पीतांबरपुर, महुलिया, अंबेडकर नगर (उ.प्र.)
शिक्षा : बी.ए. इलाहाबाद विवि.,एम.ए. कर्नाटक विवि., बी.एड व पीएचडी मुंबई विश्वविद्यालय।
अध्यापन एवं प्रशासकीय कार्य : 1979 से गोवा में विद्यालय, महाविद्यालय में हिंदी अध्यापन करते हुए 1990 से हिंदी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय में प्रवक्ता, प्रपाठक, आचार्य, अधिष्ठाता, भाषा एवं साहित्य संकाय।
प्रकाशन : 'डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन', 'समीक्षाएँ : विविध आयाम', 'काव्यास्वाद के नव्य निकष', 'साहित्य : विविध परिदृश्य', 'अंतिम दशक की हिंदी कविता'। देश की विभिन्न हिंदी पत्र-पत्रिकाओं एवं संपादित पुस्तकों में 80 आलेख तथा कोंकणी कविताओं, कहानियों एवं निबंधों का हिंदी में अनुवाद समकालीन भारतीय साहित्य एवं भाषा पत्रिका, नई दिल्ली में प्रकाशित।
संप्रति : अतिथि आचार्य-हिंदी, इंडोलॉजी विभाग, मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान संकाय, जाग्रेब विश्वविद्यालय, क्रोएशिया, यूरोप (अप्रैल 2016 से जुलाई 2017)।

हासिल की है। गांधी जी ने स्वराज्य के संबंध में लिखा था कि, ''पूर्ण स्वराज्य कहने का आशय यह है कि वह जितना किसी राजा के लिए होगा उतना ही किसान के लिए, जितना किसी धनवान ज़मींदार के लिए होगा, उतना ही भूमिहीन खेतिहर के लिए, जितना हिंदुओं के लिए होगा, उतना ही मुसलमानों के लिए भी, जितना जैन, यहूदी और सिक्ख के लिए होगा, उतना ही पारसियों और ईसाइयों के लिए। उसमें जाति-पाँति, धर्म अथवा दर्जे के भेद-भाव के लिए कोई स्थान नहीं होगा।'' लोकतंत्र की यही सही अवधारणा है। भारत में इसकी स्थापना के पीछे सुविचारित उद्देश्य था। प्रारंभ में उसे अमलीकरण का जामा पहनाने में बहुत सी सावधानियाँ बरती गईं। कालांतर में जातिवाद, भाषावाद, परिवारवाद, प्रांतवाद, सम्प्रदायवाद आदि के कारण लोकतंत्र का स्वरूप धूमिल हुआ।

गांधी जी ने स्वराज्य के संबंध में लिखा था कि, ''पूर्ण स्वराज्य कहने का आशय यह है कि वह जितना किसी राजा के लिए होगा उतना ही किसान के लिए, जितना किसी धनवान ज़मींदार के लिए होगा, उतना ही भूमिहीन खेतिहर के लिए, जितना हिंदुओं के लिए होगा, उतना ही मुसलमानों के लिए भी, जितना जैन, यहूदी और सिक्ख के लिए होगा, उतना ही पारसियों और ईसाइयों के लिए। उसमें जाति-पाँति, धर्म अथवा दर्जे के भेद-भाव के लिए कोई स्थान नहीं होगा।''

70-80 के दशक तक परिवेशगत परिवर्तन के कारण मानवीय सोच और उसके रहन-सहन में भी बदलाव आया। भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद, मीडिया विस्फोट, तकनीकी संचार आदि के कारण बदलाव की प्रक्रिया तीव्र हुई। इसके परिणामस्वरूप लोकतंत्र में नवउदारवादी पूँजीवाद का जन्म हुआ जोकि पूँजीवाद के विस्तार के लिए पूरी तरह कटिबद्ध है। इससे रोज़गार के नए अवसर व्यापक रूप से आए और लोगों की जीवन-शैली में भी परिवर्तन आया। गांधी जी की दृष्टि में लोकतंत्र केवल एक राजनीतिक व्यवस्था ही नहीं है, वह सामाजिक और नैतिक व्यवस्था भी है लेकिन पूंजीवाद केवल लाभ की चिंता करता है। वह लाभ के रास्ते में विरोधी के रूप में आनेवाली किसी भी सामाजिक, नैतिक और मानवीय स्थिति की परवाह नहीं करता इसीलिए भारत का वर्तमान लोकतंत्र सामाजिक न्याय, नैतिक उत्थान और मानवीय यातना की कोई चिंता नहीं करता। आज के भारतीय लोकतंत्र में केवल पूंजीवाद के प्रसार की चिंता है, समाज में लोकतंत्र के विकास की, जनता के स्वतंत्र रूप से जीने, सोचने और कुछ कहने के अधिकारों की नहीं।

कवि अष्टभुजा शुक्ल बाज़ारवाद, पूँजीवाद, राजनीतिक शतरंजबाज़ी, अवसरवादिता आदि का सही चित्र खींचते हुए लिखते हैं।

''मुँह में राम बगल में छुरी, पहने पीयर बाना।
जातिधर्म पर खून-खराबा, करते उखमज नाना॥
नेता, तस्कर से प्रधान तक सब मौसेरे भाई।
हम सूखी रोटी को तरसे, उनके लिए मलाई॥
पाँच वर्ष पर जुटें मदारी, खेल करें बहुरंगा।
करि-करि मारें बैल सब हाँफें, बैठे खायं तुरंगा॥''

लोकतंत्र में लोक और तंत्र में दूरियाँ बढ़ती गईं। इसका लाभ समाज के एक तबके को अधिक मिला। इसमें जनता की भागीदारी कम हुई। उत्तर आधुनिकता के दौर में तकनीकी प्रचार के कारण मीडिया आम जनता से जुड़ा। दरअसल लोकतंत्र के इस चौथे पाए की स्थापना जनता को शिक्षा, सूचना और मनोरंजन प्रदान करने के लिए की गई। प्रारंभिक दौर में प्रिंट मीडिया ने अपने संवैधानिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह बड़ी कुशलता से किया। आज़ादी के आंदोलनों में समाचार पत्रों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। आज भी उन पत्रकारों को सीमित संसाधनों के बीच त्याग, निष्ठा, ईमानदारी और कर्तव्यबोध के लिए याद किया जाता है। उन्होंने राजनीतिक विश्वासों, सामाजिक रीति-रिवाज़ों और जनता के बुनियादी सांस्कृतिक संवेगों को प्रभावित करने हेतु सराहनीय कार्य किए। मीडिया का धर्म है कि वह जनता के साथ व्यापक स्तर पर संवाद स्थापित कर लोकतंत्र को मज़बूत बनाए। साहित्य की भाँति लोकतंत्र और मीडिया के मूल में लोकमंगल की भावना निहित है। संसदीय लोकतंत्र में संसद, जनता और मीडिया आपस में तालमेल बैठाकर ही लोकतंत्र को शक्तिशाली और प्रभावी बना सकते हैं।

हमारे संविधान निर्माताओं ने लोकतंत्र और मीडिया के रिश्तों को देश के हित में जाँचा और परखा। दोनों ने लोकमंगल की भावना से काम भी करना शुरू किया। मानव कल्याण के विविध क्षेत्रों में इन दोनों के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। लोकतंत्र को मज़बूत करने में मीडिया सतत प्रयत्नशील रहा है। महात्मा गांधी ने 1903 में दक्षिण अफ्रीका में 'इंडियन ओपिनियन' नामक समाचार पत्र के द्वारा भारतीय विचारों एवं दृष्टिकोणों को हमारे सामने रखा।

पत्रकारिता के संबंध में उन्होंने कहा कि, ''पत्रकार को देश सेवक, लोक सेवक तथा जागरण कर्ता एवं मार्गदर्शक होना चाहिए।''

किसी भी समाज के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास, उत्थान और गत्यात्मकता के लिए मीडिया की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। इतिहास गवाह है कि समय-समय पर मीडिया ने जनमानस को झंकृत कर लोकतंत्र और समाज की रक्षा की है। आज़ादी के पूर्व पत्रकारिता की कलम ने तलवार की भूमिका निभाई है। हिंदी एवं अन्य भारतीय साहित्यकारों ने साहित्यकार और पत्रकार के रूप में राष्ट्रीय चेतना को प्रखर रूप से झंकृत किया। हिंदी साहित्य में यह चेतना भारतेंदु हरिश्चंद्र मंडल के रचनाकारों से प्रारंभ होकर मैथिलीशरण गुप्त, छायावाद एवं छायावादोत्तर रचनाकारों में रामधारी सिंह 'दिनकर', माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्राकुमारी चौहान आदि की रचनाओं में सर्वत्र विद्यमान है। राष्ट्रीय चेतना के प्रहरी महात्मा गांधी पर भी कविताएँ लिखी गईं। कमल किशोर गोयनका अपनी पुस्तक 'गांधी : पत्रकारिता के प्रतिमान' में लिखते हैं, ''गांधी की आर्थिक नीति कोई व्यावसायिक नहीं थी बल्कि वह उनकी भारतीय दृष्टि का अंग थी जिसमें दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों को एक सूत्र में बाँधकर वे उन्हें स्वाभिमान, अस्मिता और स्वतंत्रता के साथ सामाजिक परिवर्तन के लिए तैयार कर रहे थे।''

हमारे संविधान निर्माताओं ने लोकतंत्र और मीडिया के रिश्तों को देश के हित में जाँचा और परखा। दोनों ने लोकमंगल की भावना से काम भी करना शुरू किया। मानव कल्याण के विविध क्षेत्रों में इन दोनों के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। लोकतंत्र को मज़बूत करने में मीडिया सतत प्रयत्नशील रहा है। महात्मा गांधी ने 1903 में दक्षिण अफ्रीका में 'इंडियन ओपिनियन' नामक समाचार पत्र के द्वारा भारतीय विचारों एवं दृष्टिकोणों को हमारे सामने रखा। पत्रकारिता के संबंध में उन्होंने कहा कि, ''पत्रकार को देश सेवक, लोक सेवक तथा जागरण कर्ता एवं मार्गदर्शक होना चाहिए।''

साहित्य, लोकतंत्र, मीडिया, न्याय व्यवस्था आदि का मूल धर्म है—जनता की सेवा करना। सेवा एक मूल्य है। मूल्यों में आस्था के बिना जनता की सेवा नहीं की जा सकती। लोकतंत्र की रक्षा के लिए मूल्यों में आस्था अनिवार्य है।

21वीं सदी में वैश्वीकरण के केंद्र में बाज़ारवाद के आने से मूल्यों का क्षरण जिस तीव्र गति से हो रहा है, मनुष्य ने उसकी कभी कल्पना भी नहीं की होगी। इसका प्रभाव व्यक्ति, परिवार, समाज और देश पर व्यापक रूप से पड़ रहा है। दरअसल इससे जीवन का संपूर्ण ताना-बाना ही बदल रहा है। परंपरा और आधुनिकता की कशमकश में जीवन का वास्तविक स्वरूप गायब हो रहा है। मनुष्य प्रकृति को प्रदूषित कर स्वयं की प्रकृति को भी प्रदूषित कर रहा है। प्रकृति अर्थात पवित्रता, निर्मलता, वास्तविकता, शुद्धता आदि। जीवन के बदलाव के साथ साहित्य और मीडिया की भाषा भी बदल रही है। बाज़ारवाद के कारण इतने सारे बाज़ारू शब्दों की निर्मिति हो रही है कि साहित्य लेखन, गंभीर वार्ताओं और हमारे सोचने-समझने की प्रक्रिया में उन शब्दों का बराबर हस्तक्षेप हो रहा है। पहले साहित्य और मीडिया की भाषा में अंतर था। अब साहित्य की शब्दावली सरल एवं व्यंजनापूर्ण हुई है लेकिन मीडिया की भाषा की तरह लगने लगी है। पहले मीडिया की भाषा में पारदर्शिता होते हुए भी उसकी अपनी गरिमा थी। धर्मपाल ने लिखा है कि, ''प्रत्येक भाषा एक विशद अर्थ परंपरा, दर्शन परंपरा और विचार परंपरा की अभिव्यक्ति होती है। जब हम विदेशी भाषा को अपनाते हैं तो प्राय: स्वयं को, विश्व को, व्यक्ति, समाज, संस्थाओं, मान्यताओं, लक्ष्यों, रुचियों, आदर्शों आदि को भी हम उसी भाषा परंपरा और संस्कृति परंपरा में देखने लगते हैं।'' भाषा और साहित्य परिवेश की उपज होती है। जिस समाज में हम रहते हैं, उसकी सोच और भाषा का प्रभाव धीरे-धीरे मनुष्य पर पड़ने लगता है। नई भाषा और सोच के चलते आधुनिक बनने की होड़ में मनुष्य अपनी मौलिकता को खोने लगता है। हमारी लोक संस्कृति के धीरे-धीरे विलुप्त होने के पीछे यही कारण है। तकनीकी दुनिया का विकास होने से घर-गृहस्थी से जुड़े 'खटिया', 'मचिया', 'बीड़ा', 'पीढ़ा', 'बोरसी', 'जुआठा', 'हेंगा', 'खुरपी', 'हाड़ी', 'पतकी', 'तसला', 'कूड़ा', 'हौदी', 'परई', 'कोसा', 'भरूका' आदि अनगिनत लोक शब्दों का रोज़मर्रा के जीवन में कम प्रयोग होने लगा है। लोक की भूमि से ही आधुनिकता का जन्म हुआ है। साहित्य और पत्रकारिता के लिए ये लोक शब्द ऊर्जा की भाँति कार्य करते हैं।

हम देख रहे हैं कि हिंदी भाषा की शब्दावली में काफ़ी परिवर्तन हो रहा है। बहुत सारे नए शब्द जुड़ रहे हैं और पुराने शब्द जो

गौरैया की भाँति रोज़मर्रा की जिंदगी में फुदक रहे थे, उसी की भाँति गायब हो रहे हैं। भाषा में शब्दों के गायब होने का दु:ख आँगन में फुदकती गौरैया के गायब होने के दु:ख से कम नहीं है। इन दोनों के अभाव में जीवन में रिक्तता की अनुभूति हो रही है।

मीडिया लोकतंत्र को सामाजिक, सांस्कृतिक, सुरक्षा आदि अनेक दृष्टिकोणों से मज़बूत कर रहा है। इसमें कोई संदेह नहीं है, लेकिन यह भी बाज़ारवाद की गिरफ़्त में आ गया है। गणतंत्र का रक्षक होने के कारण उसे थोड़ा संयम बरतने की ज़रूरत है। यह सही है कि जब आँधी आती है तो सब कुछ बहा ले जाती है। यहाँ 'एक था पेड़ और एक था ठूँठ' निबंध की याद आती है। ठूँठ मूल्यों के प्रति अडिग रहता है। दरअसल मूल्यों के विघटन के दौर में अपने को बचा पाना कठिन ज़रूर है लेकिन नामुमकिन नहीं। दुखद पक्ष यह है कि मीडिया भी बाज़ारवाद की भाषा को खूब बढ़ावा दे रहा है, जिसका दोहन बाज़ार भरपूर कर रहा है। यहाँ दूरदर्शन पर कुछ समय पूर्व के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं। 'थोड़ी कमाई कर लें फिर वापस लौटते हैं।' (31 अगस्त, 2012, स्टार न्यूज़), 'क्या ढीले पड़ गए हैं बाबा रामदेव!', 'खबरदार! भारी बारिश की आशंका', 'टी.-20 का टाइगर फिर दहाड़ेगा!', 'काले धन पर हल्ला बोल!', 'कब गिर-फ़्तार होंगे गोपाल कांडा?', 'क्या सोनिया का गुस्सा जायज़ है?', 'आडवानी का बयान जायज़ या नाजायज़!', 'क्या संसद में हंगामा फ़िक्स है?', 'सोनिया ने क्यों कहा आक्रमण?', 'कौन किसे कर रहा है ब्लैकमेल?', 'तबाही... तबाही...तबाही', 'पिपासा सबसे बड़ा तमाशा', 'बंगलौर में बजा जीत का डंका', 'कोयले पर जारी है कुहराम', 'बारिश से मुंबई ठप्प!' 'यंगिस्तान ने किया कमाल!' 'राँची में कपड़ा पहाड़ विरोध', 'कर्नाटक में फिर किच-किच', 'ताकत पुरानी नई कहानी', 'फटा पोस्टर निकले राहुल', 'अजब लालू की गजब कहानी' आदि कतिपय पंक्तियाँ 'आजतक' और 'स्टार न्यूज़' की हैं। बाज़ारवाद के प्रभाव के कारण हिंसा, बलात्कार, आत्महत्या, प्रेम प्रसंगों, साम्प्रदायिक दंगों, राजनीतिक वैमनस्य, धार्मिक पाखंडों आदि खबरों को मायावी भाषा का जामा पहनाकर भयावह और आश्चर्यजनक रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

हिंदी समाचार पत्रों की भाषा पर बात करें तो 'कितने बदल गए सलमान', 'झीलों के होठों पर मेघों का राग', 'मॉनसून में लोकल ट्रेनों को मिले पासिंग मार्क्स' जैसी शब्दावली का प्रयोग हो रहा है। दूरदर्शन के चैनल दर्शकों को लुभाने के लिए कोई कसर नहीं छोड़ रहे हैं। समाचार के महत्वपूर्ण संवादों को बीच में रोककर विज्ञापन दिखाए जाते हैं। जैसा कि मैंने पहले ही कहा है कि वैश्वीकरण, सूचना तकनीक, पाश्चात्य संस्कृति आदि के प्रभाव के कारण मीडिया की शब्दावली हिंग्लिश का रूप धारण करती जा रही है। आज तकनीकी युग का समय है, ज़ाहिर है कि हिंग्लिश के शब्दों में वृद्धि होगी लेकिन यह इतनी नहीं होनी चाहिए कि मूल भाषा की आत्मा ही मर जाए। दुखद पक्ष तो यह है कि हिंदी समाचार पत्रों में 'प्रतियोगिता' की जगह 'कंपटीशन', 'विकास' की जगह 'प्रोग्रेस' आदि बहुतेरे शब्दों का प्रयोग हो रहा है। जिन हिंदी शब्दों के अर्थ कठिन हैं उनके इक्के-दुक्के प्रयोग हिंग्लिश में हो तो कोई बात नहीं। आजकल हिंदी शब्दों का रोमन लिपि में बहुतायत प्रयोग किया जा रहा है।

हिंदी समाचार पत्रों में हिंग्लिश शब्दों की संख्या बढ़ती जा रही है। यहाँ मैं कतिपय उदाहरण दे देना समीचीन समझता हूँ– 'मर्डर', 'एग्ज़ीक्यूटिव', 'सीनियर इंस्पेक्टर', 'वाचमैन', 'इंफ्रास्ट्रक्चर', 'सब कमिटी', 'फर्स्ट ईयर', 'इंडेक्स', 'पुराने स्टेज', 'डबल चुनौती', 'सपोर्टरों', 'हाई प्रोफ़ाइल', 'कन्फ़्यूजन' आदि। समाचार पत्रों में वाक्यों के अंतर्गत अंग्रेज़ी शब्दों के कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं–''सोसाइटी, फ़ैमिली, कैरियर और महिलाओं और पुरुषों के रोल में बदलाव पर बहस चल रही है।

हिंदी समाचार पत्रों में हिंग्लिश शब्दों की संख्या बढ़ती जा रही है। यहाँ मैं कतिपय उदाहरण दे देना समीचीन समझता हूँ— 'मर्डर', 'एग्ज़ीक्यूटिव', 'सीनियर इंस्पेक्टर', 'वाचमैन', 'इंफ्रास्ट्रक्चर', 'सब कमिटी', 'फर्स्ट ईयर', 'इंडेक्स', 'पुराने स्टेज', 'डबल चुनौती', 'सपोर्टरों', 'हाई प्रोफ़ाइल', 'कन्फ़्यूजन' आदि। समाचार पत्रों में वाक्यों के अंतर्गत अंग्रेज़ी शब्दों के कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं—''सोसाइटी, फ़ैमिली, कैरियर और महिलाओं और पुरुषों के रोल में बदलाव पर बहस चल रही है। कैरियर और फ़ैमिली की ज़िम्मेदारियाँ, वर्क-लाइफ़ बैलेंस हासिल करने का यह पहला तरीका, एंटी-विमेन, एंटी फ़ैमिली, टेली कॉन्फ्रेंसिंग और वर्क फ्रॉम होम, पैटरनिटी लिव का सिस्टम'' आदि अंग्रेज़ी के बड़े-बड़े जुमलों का प्रयोग हो रहा है। 'समाज', 'परिवार', 'कार्य', 'जीवन', 'घर',

'नारी' आदि हिंदी के सरल शब्दों के स्थान पर अंग्रेज़ी शब्दों के प्रयोग का औचित्य समझ में नहीं आता। प्रत्येक भाषा का अपना स्वरूप और गुण होता है। उसकी जगह अन्य भाषा यानी अंग्रेज़ी के शब्दों का हठात प्रयोग करने से उसकी आत्मा का हनन होता है।

आज़ादी के बाद मूल्यों का विघटन हुआ है। इसका प्रभाव मीडिया पर भी दिखाई देता है। इसके कई उद्देश्यों में एक प्रमुख उद्देश्य सेवाभाव था। वह आज भी है लेकिन उस पर बाज़ारवाद का प्रभाव दिखाई दे रहा है। दरअसल बात यह है कि जब ऊपर से नीचे तक हर क्षेत्र में अवमूल्यन हुआ तो भला मीडिया उससे कब तक वंचित रहता? हमारी न्याय व्यवस्था पर भी समय-समय पर कतिपय काले धब्बे लग गए। जनता के सेवकों और विधि निर्माताओं के विषय में भी सबको पता है। विगत कुछ समय से सकारात्मक परिवर्तन की एक हल्की सी बयार चली है। यदि यह आँधी बनकर झंकृत करे तो लोकतंत्र का ढांचा मज़बूत होगा। मीडिया लोकतंत्र की एक बड़ी ताकत है। इसे संभल कर चलना चाहिए अन्यथा जिस प्रकार जल की अबाधित प्रचण्ड धारा अंचल को डुबा देती है और फ़सलों को नष्ट कर डालती है, उसी प्रकार अनियंत्रित कलम सेवा और धुआँधार विज्ञापन भी मीडिया को क्षति पहुँचा सकता है। दुखद पक्ष यह है कि आज अधिकांश प्रचार माध्यम फ़िल्म और दूरदर्शन बाज़ार और बाज़ारू माफ़िया के अधीन हैं जहाँ सामाजिक, मानवीय तथा वैचारिक विषय वस्तु का मीडिया से लगभग गायब होना हमारे जीवन के लिए चुनौती बन गया है। प्रभाकर श्रोत्रिय का कथन है कि, ''जो लोग हिंदी को उदारता की सीख देते हैं, उन्हें समझना चाहिए कि हिंदी कोई जड़ भाषा नहीं है, गतिशील भाषा है, उसने हज़ारों आयातित नए शब्द अपनाए हैं।... परंतु जो कॉर्पोरेट भाषा आ रही है, वह प्रायोजित और आरोपित है और उसका उद्देश्य भाषा की अभिवृद्धि नहीं है। इस अंतर को भली-भाँति समझ जाना चाहिए।'' दरअसल आज जिस तरह से मीडिया पर बाज़ारू हिंदी का प्रयोग हो रहा है उससे हिंदी का नहीं अपितु बाज़ार का लाभ हो रहा है। नूर लखनवी के शब्दों में कहें तो—

''इतने हिस्सों में बंट गया हूँ मैं कि
मेरे हिस्से में कुछ बचा ही नहीं।''

आज संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का प्रचार-प्रसार देश में ही नहीं अपितु संपूर्ण विश्व के कई भूभागों में हो रहा है। हिंदी अपने समावेशी स्वभाव के कारण विविध रूपों में विकसित हो रही है। यह सही है कि बाज़ारवाद के कारण उसके मूल स्वरूप में बदलाव आया है लेकिन बाज़ारवाद और आवागमन की सुविधा ने हिंदी को व्यापकता भी प्रदान की है। दूरदर्शन की व्यापकता और लोकप्रियता से अहिंदी परिवारों की नई संतति के बीच हिंदी की लोकप्रियता बढ़ी है। वे अपने माता-पिता की तुलना में अच्छी हिंदी बोल और लिख लेते हैं। संगणक और मोबाइल से इसे और बल मिला है। संगणक के सुडौल, सुंदर और व्यवस्थित शब्दों ने सबको प्रभावित किया है लेकिन जैसे मोबाइल आने पर लोगों ने चिट्ठी लिखना बंद कर दिया है, वैसे ही संगणक के कारण अब हाथ से कलम गायब हो रही है। मीडिया के बहुत सारे सकारात्मक अवदानों के बावजूद उसने हिंदी भाषा की संस्कृति और उसकी गुणवत्ता को प्रभावित किया है। जनसंचार के विविध माध्यमों द्वारा परोसी जा रही हिंदी अपनी मूल प्रकृति को छोड़कर विज्ञापन की बाज़ारू हिंदी बन रही है। हिंदी हमारी अस्मिता और संस्कृति की भाषा है जोकि अपनी सांस्कृतिक अस्मिता और विरासत से कुछ मायनों में वंचित हो रही है। मुझे संतोष इस बात का है कि वह वैश्विक धरातल पर अपना परचम फहरा रही है।

संदर्भ सूची—

1. यंग इंडिया
2. दस्तावेज़
3. कमल किशोर गोयनका—गांधी : पत्रकारिता के प्रतिमान
4. अंतरजाल
5. धर्मपाल—भारत की पहचान
6. वागर्थ—दिसंबर 2009

जाग्रेब विश्वविद्यालय, क्रोएशिया, यूरोप
rnmishra@unigoa.ac.in